RESEARCH PAPER | Philosophy | Volume : 5 | Issue : 8 | August 2015 | ISSN - 2249-555X

JAIN DARSHAN ME TATV MIMANS

KEYWORDS

Sadhna Jain

Research Scholar JJTUniversity jhunjhunu (Raj.) 333001

प्रयोजनभूत वस्तु के स्वभाव को तत्व कहते है। परमार्थ में एक शुद्धात्मा ही प्रयोजनभूत तत्व है। वह संसारावस्था में कर्मों से बँधा हुआ है। उसको उस बन्धन से मुक्त करना इष्ट है। ऐसे हेय व उपादेय के भेद से वह दो प्रकार का है अथवा विशेष भेद करने से वह सात प्रकार का कहा जाता है। यद्यपि पुण्य व पाप दोनों ही आस्रव है पन्तु संसार में इन्हीं दोनों की प्रसिद्धि होने के कारण इनका पृथक निर्देश करने से वे तत्व नौ हो जाते हैं।

तत्व का अर्थ :– जिस वस्तु का जो भाव है वह तत्व है।1अपना तत्व स्वतत्व होता है, स्वभाव असाधारण धर्म को कहते है। अर्थात् वस्तु के असाधारण रूप स्वतत्व को तत्व कहते है।आत्म तत्व अर्थात् आत्मा का स्वरूप तथा जो पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है उसका उस रूप होना यही तत्व शब्द का अर्थ है।2 तत्व का लक्षण सत् है अथवा सत् ही तत्व है। जिस कारण से कि वह स्वभाव से ही सिद्ध है, इसलिए वह अनादि निधन है वह स्वसहाय है और निर्विकल्प है।3

तत्वार्थ का अर्थ :– जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म, काल और आकाश यह तत्वार्थ कहे है, जो कि विविध गुणपर्यायों से संयुक्त है।4 तत्वार्थ माने जो पदार्थ जिस रूप से स्थित है उसका उसी रूप से ग्रहण। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व है।5इन्ही में पुण्य, पाप मिला देने पर तत्व नौ पदार्थ हो जाते है।

सात तत्त्व या नौ पदार्थो में केवल जीव व अजीव ही प्रधान है :–

ये नो पदार्थो में केवल जीव और अजीव (पुद्गल रूप) है, क्योंकि वास्तव में अपने द्रव्य क्षेत्रादिक के द्वारा कर्ता तथा कर्म में अन्यत्व है – अनन्यत्व नही है।6

पुण्य–पाप :– जीव के दया, दानादि रूप शुभ परिणाम पुण्य कहलाते हैं। यद्यपि लोक में पुण्य के प्रति बड़ा आकर्षण रहता है, परन्तु मुमुक्षु जीव केवल बन्धरूप होने के कारण इसे पाप से किसी भी प्रकार अधिक नहीं समझते। इसके प्रलोभन से बचने के लिए सदा इसकी अनिष्टता विचार करते है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह सर्वथा पाप रूप ही है। लौकिकजनों के लिए यह अवश्य ही पाप की अपेक्षा बहुत अच्छा है। यद्यपि मुमुक्ष जीवों को भी निचली अवस्था में पुण्य प्रवृति अवश्य होती है, पर निदान रहित होने के कारण उनका पुण्य पुण्यानुबन्धी है जो परम्परा मोक्ष का कारण है। लोकिक जीवों का पुण्य निदान व तृष्णा सहित होने के कारण पापानुबन्धी है, तथा संसार में डूबने वाला है। ऐसे पुण्य का त्याग ही परमार्थ से योग्य है। पर के प्रति शुभ परिणाम पुण्य है। जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होती है वह पुण्य है।7 पूजा, भक्ति, दया, दान आदि शुभ क्रियाओं रूप व्यवहारधर्म पुण्य है।

पुण्य व पाप में अन्तरंग की प्रधानता :– यदि पर को दुख उपजाने से पाप और पर को सुख उपजाने से पुण्य होने का नियम हुआ होता तो कंटक आदि अचेतन पदार्थों को पाप और दूध आदि अचेतन पदार्थों को पुण्य हो जाता। और वीतरागी मुनि (ईर्यासमिति पूर्वक गमन करते हुए कदाचित् क्षुद्र जीवों के बन्ध का कारण हो जाने से बन्ध को प्राप्त हो जाते)। यदि स्वयं अपने को ही दुख या सुख उपजाने से पाप–पुण्य होने का नियम हुआ होता तो वीतरागी मुनि तथा विद्वान्जन भी बन्ध के पात्र हो जाते, क्योंकि उनको भी उस प्रकार का निमित्तपना होता है इसलिए ऐसा मानना ही योग्य है कि स्व व पर दोनों को सुख या दुख में निमित होने के कारण, विशुद्धि व संक्लेश परिणाम उनके कारण तथा उनके कार्य ये सब मिलकर ही पुण्य व पाप के आस्रव होते हुए पराश्रित पुण्य व पापरूप एकान्त का निषेध करते हैं।8

पुण्य (शुभ नामकर्म) के बन्ध योग्य परिणाम9:– जिस जीव को प्रशस्त राग है, अनुकम्पायुक्त परिणाम है और चित्त में कलुषता का अभाव है उस जीव को पुण्य आस्रव होता है जीवों पर दया शुद्ध मन वचन काय की क्रिया तथा शुद्ध दर्शन ज्ञानरूप उपयोग से पुण्यकर्म का आस्रव होता है। व्रत से पुण्यकर्म का आस्रव होता है। अर्हन्त आदि पाँचों परमेष्ठियों में भक्ति समस्त जीवों पर करूणा और पवित्र चारित्र में प्रीति करने से पुण्य बन्ध होता है।

पुण्य व पाप में पारमार्थिक समानता :– जिसके भाव में मोह, राग, द्वेष अथवा चित्त प्रसन्नता है उसे शुभ अथवा अशुभ परिणाम होते है (वहाँ प्रशस्त राग व चित्तप्रसाद से शुभ परिणाम और अप्रशस्तराग, द्वेष ओर मिथ्यात्व से अशुभ परिणाम होते हैं।)10बन्ध और मोक्ष का कारण अपना विभाव और स्वभाव परिणाम है, ऐसा भेद जो नहीं जानता है वही पुण्य और पाप इन दोनों को मोह से करता है।11

परमार्थ से दोनों एक है :– शुभ व अशुभ जीवपरिणाम केवल अज्ञानमय होने से एक है, अतः उनके कारण में अभेद होने से कर्म एक ही है। शुभ और अशुभ पुद्गलपरिणाम केवल पुद्गलमय होने से एक है। अतः उनके स्वभाव में अभेद होने से कर्म एक है। शुभ व अशुभ फलरूप विपाक भी केवल पुद्गलमय होने से एक है अतः उनके अनुभव या स्वाद में अभेद होने से दोनों एक है। यद्यपि शुभरूप (व्यवहार) मोक्षमार्ग केवल जीवमय और अशुभरूप बन्धमार्ग केवल पुद्गलमय होने से दोनों मे अने. कता है फिर भी कर्म केवल पुद्गलमयी बन्ध मार्ग के ही आश्रित है अतः उनके आश्रय में अभेद होने से दोनों एक है।जैसे लोहे की बेड़ी पुरुष को बाँधती है, वैसे ही सोने की बेड़ी भी पुरुष को बाँधती है। इसी प्रकार अपने द्वारा किये गये शुभ व अशुभ दोनों ही कर्म जीव को बाँधते हैं।12

पुण्य की इष्टता : जिस प्रकार छाया और आतप में स्थित पथिकों के प्रतिपालक कारण ों में बड़ा भेद है। उसी प्रकार पुण्य व पाप में भी बड़ा भेद है। व्रत तप आदि रूप पुण्य श्रेष्ठ है क्योंकि उससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उससे विपरीत अवृत व अतप आदि रूप पाप श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि उससे नरक की प्राप्ति होती है।13हेतु और कार्य की विशेषता होने से पुण्य और पाप में अन्तर है पुण्य का हेतु शुभभाव है और पाप का अशुभभाव है। पुण्य का कार्य सुख है और पाप का दुःख है।

पाप :– जो आत्मा को शुभ से बचाता है वह पाप है।अनिष्ट पदार्थों की प्राप्ति जिससे होती है ऐसे कर्म को (भावों को) पाप कहते है।पर के प्रति शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। पाप हिंसादि से होने वाले अशुभ कर्म रूप होता है। चारों संज्ञाएं, तीन लेश्याएँ, इन्द्रिय वशता, आर्त रौद्रध्यान, दुःप्रयुक्त ज्ञान और मोह यह भाव पापप्रद है। अर्हन्तादि पुण्य पुरूषों की निन्दा करना, समस्त जीवों में निर्दय भाव रहना और निन्दित आचरणों में प्रेम रखना आदि बन्ध का कारण है। बहु प्रमादवाली चर्या, कलुषता, विषयों के प्रति लोलुपता, पर को परिताप करना तथा पर के अपवाद बोलना वह पाप का आस्रव करता है।मिथ्या दर्शन, अस्थिर चित्तस्वभावता, झूठे बाट तराजू आदि रखना, कृत्रिम सुवर्ण मणि रत्न आदि बनाना, झूठी गवाही, अंग उपांगों का छेदन, वर्ण गन्ध रस और स्पर्श का विपरीतपना, यन्त्र पिंजरा आदि बनाना माया बाहुल्य, पर. निन्दा, आत्म प्रशंसा, मिथ्याभाषण, पर द्रव्यहरण, महारंभ, महापरिग्रह, शौकीन वेष, रूप का घमण्ड, कठोर असभ्य भाषण, गाली बकना, व्यर्थ बकवास करना, वशीकरण, प्रयोग, सौभाग्योपयोग, दूसरे में कौतूहल उत्पन्न करना, भूषणों में रूचि, मन्दिरों के गन्धमाल्य या धूपादिका चुराना, लम्बी हँसी, ईटों का भट्टा लगाना, वन में दावाग्नि जलवाना, प्रतिमायतन विनाश, आश्रम–विनाश, आराम–उद्यान विनाश, तीव्र क्रोध मान, माया व लोभ पापकर्म जीविका आदि भी अशुभ नाम के आस्रव के कारण है।14

पाप का फल दुःख व कुगतियों की प्राप्ति :– नरक, तिर्यंच और कुमानुषकी योनियों में जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्र आदि की प्राप्ति पाप के फल है।15

ABSTRACT 1. सर्वार्थसिद्धि/2/1/150/11 2. वही /1/2/13 3. पंचध्यायी/8/ पूर्वार्ध, देवकीनन्दन 1932 ई. 4. नियमसार /मूल/गाथा संख्या/9 5. तत्त्वार्थ सूत्र/1/4 6. पंचध्यायी/3/152 7. स्वार्थसिद्धि/6/3/320/2 8. आप्त मीमांसा/92–95 9. तत्त्वार्थ सार अधिकार/4/59, जैन सिद्ध न्त, प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता, 1929 ई. 10. पंचास्तिकाय/मूल/परमश्रुत प्रभावमण्डल, बम्बई, वि.स. 1972, श्लोक संख्या 131 11. परमात्म प्रकाश/मूल/2/53/ राजचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई वि. सं. 2017, पृष्ठ177 12. समयसार/मूल/146/ अंहिसा मन्दिर प्रकाशन, देहली, प्र. सं. 31.12.1958 13. मोक्षपादुड/मूल/25/–मणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई वि.स. 1977 14. सर्वार्थसिद्धि/6/22/337/5 15. धवलापुस्तक/1/1,1/ 105/5